

. संदर्भ(हिन्दी साहित्य का इतिहास) इकाई- 3 आधुनिक काल की पृष्ठभूमि- भारतेंदु युग।

“ भारतेंदु की हिन्दी को देन” अथवा “ हिन्दी साहित्य के विकास में भारतेंदु का योगदान” की विवेचना करें

--डॉ प्रफुल्ल कुमार एसोसिएट प्रोफेसर,अध्यक्ष-हिन्दी विभाग आर आर एस कॉलेज मोकामा। पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय पटना।

भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने काल की कारयित्री एवं भावयत्री प्रतिभा के धनी साहित्यकार हुए। वर्तमान साहित्य जगत का आलोक उन्हीं की विधाओं के सत्प्रयासों का परिणाम है। परमानंद मिश्र ने भारतेंदु की सार्थकता पुस्तक में लिखा है कि “भारतेंदु उन महान लेखकों में से एक हैं जो अपने समय की धारा को बदल कर रख देते हैं” आधुनिक काल के साहित्य के प्रवर्तक एवं जनक भारतेंदु दिनांक 9/9/1850 को इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचंद के वंश की पांचवी पीढ़ी में जन्म लिये। इनका स्वर्गवास पच्चीस जनवरी अट्ठारह सौ पचासी को हुआ। मात्र 34 वर्ष की अल्पायु में उन्होंने मौलिक और अनूदित सैकड़ों रचनाएँ लिखीं। गद्य की सारी विधाओं का प्रवर्तक बनकर उसे एक मानक भाषा भी दी। उन्होंने कविता के क्षेत्र में पारंपरिक शैलियों के अतिरिक्त लोक जीवन में प्रचलित शैलियों एवं छंदों को भी अपनाया। शिष्ट काव्य ही नहीं, ग्रामीण गीतों को भी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। कई रूपों एवं लयों से हिन्दी कविता को समृद्ध किया। उन्होंने मौलिक एवं अनूदित नाटकों की रचना की और स्वयं मंचन भी किया। पात्र के रूप में भाग भी लिया। उन्होंने 3 महत्वपूर्ण पत्रों का संपादन किया। उनके पत्र मात्र साहित्य बनकर नहीं रहे बल्कि अपने समय के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। उन्होंने हिन्दी में राष्ट्रीय तथा साहित्यिक पत्रिका की नींव रखी। उनके इन्हीं कतिपय सफल प्रयासों को लक्ष्य करके शिवकुमार मिश्र ने लिखा है-“ हिंदी भाषा तथा साहित्य की उनकी इस विपुल सेवा को लक्ष्य करके हिंदी भाषी जन-समाज में उन्हें भारतेंदु के रूप में देखा और पहचाना”। आचार्य शुक्ल के अनुसार उनकी हिन्दी साहित्य को सबसे बड़ी देन है “हिंदी साहित्य को नए- नए विषयों की ओर उन्मुख करना और उसे नए और आधुनिक विचारों से लैस करना” भारतेंदु भारत के राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल के समय की उपज थे। तब भारतीय मानस मध्य काल से आधुनिक काल में संक्रमण कर रहा था। शिवकुमार मिश्र ‘भारतेंदु अंतर्विरोध के बीच’ पुस्तक में लिखते हैं कि “संस्कार और विवेक की एक गहरी कशमकश प्रबुद्ध भारतीय मानस को आक्रांत किये थी। यह पराधीनता के कठोर एहसास का समय था। एक नयी सभ्यता और संस्कृति के दबावों तथा चुनौतियों की बुद्धि तथा विवेक के साथ झेलने और स्वीकार करने का समय था। यह लंबे समय की नींद के बाद एक जागे हुए भारत को अपने अतीत वर्तमान तथा भविष्य को आंकने, पहचानने तथा उनके संदर्भ में परिपेक्ष्य के साथ क्रियाशील होने का समय था”।

उन्होंने अतीत, वर्तमान और भावी हितों को ध्यान में रखकर भारतवर्ष को संसार के उन्नतिशील देशों के साथ कदम मिलाकर चलते देखना चाहा। उनका साहित्य मोटे तौर पर 1858 से 1885 ऐसे ऐतिहासिक काल की उपज है, जिसके एक छोर पर भारतीय किसानों तथा सिपाहियों का राष्ट्रीय विद्रोह है तो दूसरे छोर पर ह्यूम के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म है। भारतीय इतिहास की वस्तुनिष्ठ विवेचना से पता चलता है कि राष्ट्रीय विद्रोह का स्वर क्रांतिकारी है तथा कांग्रेस के जन्म (1805 तक) से लगी घटनाओं का स्वर सुधारवादी। प्लोरा रानी ने 1857 के

विद्रोह को बहुत कुछ कृषकों के शांत एवं स्थिर जीवन में जागरण लाने की कोशिश कहा है। मार्क्स ने इसे राष्ट्रीय विद्रोह के रूप में देखा। जबकि भारतीय इतिहासकारों ने इसे गदर कहा है। जिसकी सफलता से भारत पिछड़ जाता।

भारतेंदु ने प्रहसनात्मक एवं फंतासी नाटकों में ब्रिटिश साम्राज्यवादी व्यवस्था को निर्मलता से उखाड़ा और भारत की असह्य पीड़ा की कहानी सुनाने की कोशिश की है। भारतेंदु ने ही सर्वप्रथम समग्र नवजागरण की धारा का सूत्रपात किया। उन्होंने आशा का संदेश देकर आलसी, रूढ़ी ग्रस्त, फूट के शिकार सोए भारतवासियों को जगाने का अथक प्रयास किया। उन्होंने सभी क्षेत्रों में सुधारवादी दृष्टिकोण लेकर मुक्ति का प्रश्न उठाया। भारतीय सिपाहियों द्वारा मिश्र विजय के पश्चात भारतेंदु ने विजयिनी विजय वैजयंती लिखकर भारत के गौरवशाली इतिहास को उजागर किया। “जो भारत जग में रह्यो सब सौ उत्तम देस, ताही भारत में रह्यो अब नहीं सुख को लेंस”! साथ ही अंग्रेजी राज में सुख समृद्धि और स्वतंत्रता के हनन को व्यक्त किया-“ भारत भूमि भई सब भाँति दुखारी” शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि यह भारतेंदु के आत्म संघर्ष का ही प्रमाण है कि उनके लेखन में उत्तरोत्तर ब्रिटिश राज की आलोचना बढ़ती ही नहीं जाती तीव्रतर होती जाती है और वे खुलेआम ब्रिटिश शासन की मखौल उड़ाने लगते हैं। तथाकथित सुशासन का पर्दाफाश करने लगते हैं। अकाल, बीमारी, बदहाली, अज्ञान, अशिक्षा सबका दोषी ब्रिटिश राज को ठहराते हैं। उनकी मुकरियाँ उनके नाटकों उनके लेखों तथा उनके अन्य लेखन में इस प्रकार के अनेक उदाहरण हमें मिलते हैं। जैसे-“ चूर्ण साहब लोग जो खाता सारा हिन्द हजम कर जाता”। ये बातें भारतेंदु बाबू की और उनके युग की राज भक्ति को आहत करती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतेंदु और उनके युग की राज भक्ति महज एक खोल था जिसे इस युग के लेखकों ने ब्रिटिश शासकों को उनका असली रूप दिखाने के लिए ओढ़े था। भारतेंदु युग का मूल स्वर राष्ट्रभक्ति था। उस राष्ट्र भक्ति का स्वर जो उस युग में संभव था। भारतेंदु राष्ट्रभक्त के रूप में जाने गए। वे अपने युग में राष्ट्र भक्ति का निर्णायक बन कर सामने आए। भारतेंदु का जो खिताब उन्हें जनता से मिला है वह सदा- सदा के लिए अमर हो जाता है।

उनकी परंपरा को दो दृष्टियों से लोग देखते हैं। एक वे हैं जो भारतेंदु की नई साहित्यिक चेतना को ब्रिटिश संस्कृति की देन मानते हैं और दूसरी वह हैं जो उन्हें शुद्ध रूढ़ीवादी बताते हैं, परंतु भारतेंदु साहित्य पर सरसरी निगाह डालने पर स्पष्ट होता है कि यह दोनों दृष्टिकोण भ्रामक हैं। लक्ष्मीसागर वाष्ण्य और शिवदान सिंह चौहान भारतेंदु की प्रगतिशीलता में अंग्रेजों की भूमिका देखते हैं और उन्हें हिंदू राष्ट्रवाद का उपासक बताते हैं। जाहिर है कि भारतेंदु और उनके सहयोगियों के साहित्य को न तो साहित्य ही मानते हैं और न ही उसका कोई राष्ट्रीय जनवादी महत्व ही स्वीकार करते हैं। परंतु इनके विरुद्ध डॉ रामविलास शर्मा- की दृष्टि में साहित्य में जहाँ-तहाँ राष्ट्र भक्ति का पूट भी है। कहीं-कहीं हिंदुओं के पक्ष में और मुसलमानों के विपक्ष में ऐसी बातें कही गई हैं जो अनुचित लगती हैं। अनेक रचनाओं में रीतिकालीन काव्य परंपरा का भी प्रभाव है। फिर भी उनकी मूल धारा राष्ट्रीय और जनवादी है। मूलचंद गौतम जी ने भारतेंदु की विरासत के लिए संघर्ष नामक पुस्तक में यह आग्रह भी किया है कि “उनके लिए इन स्थितियों को पहचानकर आधुनिक समस्याओं के समाधान की ओर बढ़ना है ताकि उनसे सीखा जा सके और पुरानी गलतियों को दोहराने से बचा जा सके”।

भारतेंदु की असंगतियों के संबंध में रामविलास शर्मा ने लिखा है कि भारतेंदु की असंगतियाँ उनके युग की सीमाओं से पैदा नहीं हुईं, वह उनके वर्ग की असंगतियाँ हैं। उस काजल की कोठरी की स्याही हैं, जिसमें भारतेंदु का जन्म हुआ था। भारतेंदु की असंगतियों का आधार समूचा युग नहीं है बल्कि एक वर्ग विशेष है। थोड़े से राष्ट्र भक्त विद्वान और रईस लोग हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि गांधीजी मशीनों के चलन और उद्योग धंधों के विकास का

विरोध करते थे। भारतेंदु का प्रचार यह था कि बाहर से तैयार माल नहीं मंगाई जाएं। अंग्रेजों ने यहाँ के लोगों को औद्योगिक कौशल में पिछड़ा रखा है। उन्हें अपना पिछड़ापन दूर करना चाहिए और देश का औद्योगिक विकास करना चाहिए। इस तरह भारतेंदु का दृष्टिकोण ज्यादा आधुनिक था। भारतेंदु जनता के पक्ष में थे और प्रेस के कड़े नियंत्रण के बावजूद उन्होंने हास्य व्यंग लेखों व नाटकों से अपनी राष्ट्रीय चेतना का प्रसार किया। इसलिए रूढ़िवादी और सरकार दोनों ही उनसे कुपित थे। जनता ने उनके कार्य के महत्व को समझा और उन्हें भारतेंदु की उपाधि से अलंकृत किया। रामविलास शर्मा ने लिखा है कि जनता ने किसी लेखक को सीधे भारतेंदु जैसी संज्ञा से अलंकृत किया हो यह भी हमारे इतिहास की अकेली घटना है। भारतेंदु की देन के क्रम में हम आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास का संदर्भ लेते हैं। उनकी लेखनी दायित्व को बड़ी चिंता से महसूस किया और निर्माण भी किया। भारतेंदु के नाटक जन शिक्षण की दृष्टि में बहुत शक्ति संपन्न हैं। अलख नारायण ने लिखा है कि उनके नाटक सामाजिक विज्ञान के उपकरण हैं सामाजिक परिवर्तन की प्रयोगशाला है अर्थात् सामाजिक जड़ता और संस्कृति मुड़ता के विरुद्ध संघर्ष का उनका ऐतिहासिक प्रयास अविस्मरणीय है। भारतेंदु की असामान्य और उर्वर प्रतिभा ने नई चाल की हिन्दी को ढालकर उसे कविता, नाटक निबंध आदि विधाओं में प्रवेश कर सकने की अभूतपूर्व लचीली क्षमता दी। उन्होंने जहाँ हमारे साहित्य की धारा को एक नया यथार्थवादी राष्ट्रीय एवं जनवादी मोड़ देने का काम किया वहीं उन्होंने तत्कालीन जीवन को भाव भूमियों की अनेकता में चित्रित कर उस युग के कथा परवर्ती लेखकों के लिए वस्तु और रूप के नए क्षितिज भी उद्घाटित किए। इस संबंध में यह कहना शायद अतिशयोक्ति न हो कि हिन्दी में भारतेंदु ने ही पहली बार हास्य और व्यंग की सामाजिक जीवन के चित्रण के सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित किया।

भारतेंदु हिंदी गद्य के साथ-साथ वस्तुतः साहित्य को ही नया जीवन संस्कार प्रदान कर रहे थे। मुख्य रूप से वे अपने समाज को बदलने का संघर्ष कर रहे थे। वह समर्थन और विरोध आसक्ति और असंतोष की मिली-जुली रणनीति पर चल रहे थे। “अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी, पै धन विदेश चलि जात इहै अति खवारी”। प्रथम पंक्ति में आशा का भाव है तो दूसरी पंक्ति में विरोध का स्वर फूट पड़ा है। भारतेंदु के नाटक और निबंधों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे साहित्य में परिवर्तन चाहते हैं। ठीक उसी तरह जैसा वे समाज में परिवर्तन चाहते हैं। भारतेंदु जी देशवासियों के सर्वांगीण विकास के आकांक्षी थे। वे देश की सभी अवस्थाओं सभी जातियों में उन्नति देखना चाहते थे। उन्होंने अपने देश की भाषा ही नहीं सभी कलाएं और सभी वस्तुओं का उपयोग करने तथा उसके विकास का विचार दिया। आचार्य शुक्ल ने अपने साहित्य संचालकों का उचित आदर करने पर बल दिया है। उन्होंने सच्चे पुरुष रत्नों की पहचान करने का आग्रह किया है। निसंदेह भारतेंदु हमारे समक्ष ऐसे पुरुष रत्न साहित्यकार हैं जिनके प्रति अनुदार तथा उपेक्षित व्यवहार कभी भी कोई भी आलोचक करता हो तो उसे या तो अल्पज्ञ समझा जाएगा अथवा अपनी आलोचना क्षमता का दम्भी। कारण यह कि जिसने संघर्षों के बीच से साहित्य जगत की प्रतिष्ठा के लिए लड़ाई लड़ी है उसके साहित्य में और प्रयासों में जो कुछ त्रुटियाँ दिख पड़े वह उनकी असफलता नहीं हो सकती है बल्कि उनके प्रयासों के किनारे में छूटे हुए अंश हो सकते हैं। यदि इन्हीं कुछ अंशों को आधार बनाकर भारतेंदु का मूल्यांकन कर दिया जाए तो वह उनके प्रति अन्याय होगा। आवश्यकता है उनके द्वारा प्रारंभ किए गए कार्यों को आगे बढ़ाने की।
